विक्रमशिला विश्वविद्यालय

प्रो. (डॉ.) सुरेन्द्र कुमार
प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष-इतिहास
पटना विश्वविद्यालय, पटना-800005

- भागलपुर-जिला स्थित विक्रमशिला विश्वविद्यालय भी विश्व का एक विशाल संरक्षित-विश्वविद्यालय है, जिसने विश्व प्रसिद्ध नालन्दा–विश्वविद्यालय को भी द्वितीय स्थान पर पीछे कर दिया था। नालन्दा का संरक्षित क्षेत्र 80 एकड़ में फैला है, जबकि विक्रमशिला सौ एक क्षेत्र में फैला हुआ है लेकिन छात्रों, शिक्षकों, मठ और मन्दिरों की संख्या में नालन्दा-विश्वविद्यालय विक्रमशिला से बड़ा था। नालन्दा-विश्वविद्यालय में ३२५ कमरे और ६ मन्दिर थे, जबकि विक्रमशिला में 208 कमरे और 4 मन्दिर था। इस विश्वविद्यालय को विश्व का दूसरा आवासीय विश्वविद्यालय होने का गौरव प्राप्त है। यह विश्वविद्यालय

- इसी प्राचीन विश्वविद्यालय के भग्नावशेष भागलपुर रेलवे स्टेशन से ५० किलोमीटर की दूरी पर अंतीचक-ग्राम में मूकदर्शक बनकर अपनी गौरव गाथा कह रहे हैं। विक्रमशिला-महाविहार का नामकरण वास्तव में उस महाविहार के अध्यापक व विद्यार्थियों के दृढ़ चरित्र और अनुशासन के कारण पड़ा और इसी नाम से वह विख्यात हुआ। इस महाविहार के सम्बन्ध में कहा जाता है कि 'विक्रम' का अर्थ मज़बूत, शक्तिशाली और 'शील' का अर्थ चरित्र से सम्बन्धित है। कहने का तात्पर्य यह है कि इसका नामकरण विक्रमशील इसलिए दिया गया है कि यहाँ से जो भी विद्यार्थी विद्या प्राप्त करके निकलेंगे वे बहुत ही दृढ़ चरित्रवाले विद्वान

- कुछ लोगों का विश्वास है कि धर्मपाल का नाम विक्रमशील भी था और उसने अपने इसी नाम पर इस विश्वविद्यालय की स्थापना की और तिव्वती-स्त्रोतों के अनुसार यहाँ विक्रम नामक एक यक्ष को पराजित किया गया था इसलिए इसे विक्रमशिला कहा जाता है। तिब्बती-इतिहासकार लामा तारानाथ की प्रसिद्ध पुस्तक 'बौद्धधर्म का इतिहास' के अनुसार १०वीं शताब्दी आते आते विक्रमशिला नालन्दा विश्वविद्यालय से भी एक वृहत शिक्षा केन्द्र बन गया था। धर्मपाल ने अध्ययन के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए 108 विद्वान विभागाध्यक्ष और 108 आचार्यों की नियुक्ति की थी। विश्वविद्यालय के सभा भवन में एक साथ 8000 विद्यार्थी तथा विद्वान बैठक कर धर्म-प्रवचन सुनते

- यहाँ भी नालन्दा की तरह सुदूर देशों जैसे – जापान, चीन, तिब्बत, कोरिया, थाईलैंड, भूटान, नेपाल आदि के विद्यार्थी शिक्षा-ग्रहण करने के लिए लालायित रहते थे। सफल छात्रों की योग्यता की घोषणा सत्तारूढ़ शासक के द्वारा दीक्षांत समारोह में की जाती थी। यह प्रम्परा विक्रमशिला में पहली बार लागू हुई थी। उच्चकोटि की शिक्षा प्राप्त करके विक्रमशिला के विद्यार्थी पंडित और महापंडित की उपाधि धारण करते थे। यह डिग्री या उपाधि राजा द्वारा विद्यार्थियों को दी जाती थी। ये उपाधियाँ विक्रमशिला-महाविहार की उच्चतम डिग्री थी। यहाँ भी नामांकन के लिए प्रवेश परीक्षा देनी पड़ती थी। लामा तारानाथ के अनुसार इस विश्वविद्यालय में छह प्रवेश द्वार थे, जो विषयों के प्रकांड विद्वान आचार्यों द्वारा रक्षित थे। वे आचार्य द्वार-पंडित कहे जाते थे। इस महाविहार में प्रवेश पाने के लिए विद्यार्थी को पहले प्रत्येक द्वार-पंडित से शास्त्रार्थ करना पड़ता था और जो इसमें उत्तीर्ण होता था वही इस महाविहार में प्रवेश पाने का अधिकारी होता था। प्रवेशार्थियों की योग्यता, चरित्र और धारणा

- यहाँ छह उच्चकोटि के पंडित थे, जो इसमें प्रवेश पाने वाले विद्यार्थियों के ज्ञान का साक्षात्कार करके उन्हें प्रवेश योग्य घोषित करते थे। रत्नाकार शांति, पश्चिमी द्वार पर वागीश्वर कीर्ति, उत्तरी द्वार पर नरोपा, दक्षिणी द्वार पर प्रज्ञाकरमती, प्रथम केन्द्रीय द्वार पर रत्नवद, द्वितीय द्वार पर और केन्द्रीय द्वार पर ज्ञानश्री मित्र थे। यहाँ के शिक्षक बहुत ही विद्वान और उच्चकोटि के पंडित होते थे।

- नए विद्यार्थी प्रथमत: एक भिक्षु के पास शिक्षा पाने के लिए जाते थे। बाद में उन्हें उच्च-शिक्षकों के लिए ऊँचे स्तर के पंडित के अधीन रहकर ज्ञान प्राप्त करना होता था। विद्यार्थी को शिक्षकों के अधीन सारे कार्य करने पड़ते थे। अपने अध्ययन तथा महाविहार के कार्यकलापों के अलावा उन्हें एक सेवक के समान कार्य करना पड़ता था। वाद-विवाद और तर्क द्वारा भी शिक्षा दी जाती थी। इस महाविहार के शिक्षक एवं छात्र इसमें स्वच्छन्द रूप से भाग लेते थे। यहाँ के शिक्षक किसी एक विषय पर ही नहीं बल्कि सभी विषयों पर तर्क करते थे। इस विश्वविद्यालय के महत्व को बढ़ाने में जिन प्रमुख विद्वानों को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है इनमें श्री ज्ञान, अतिश,

मुख्य स्तूप के प्रवेश द्वार का सुपर स्ट्रक्चर और वहां रखे पिलर

- यहाँ के शिक्षकों को शिक्षा प्रदान के अतिरिक्त और भी कार्य करने पड़ते थे। यहाँ के विद्वान लंका, चीन, तिब्बत, नेपाल आदि स्थानों पर नियमित जाया करते थे। नए विद्यार्थियों की देखभाल, उनके खाने का प्रबन्ध, महाविहार के सेवकों का निरीक्षण, महाविहार के कार्यकलापों की देखभाल तथा महाविहार में अनुशासन एवं शांति कायम रखना इत्यादि पर विशेष दृष्टि थी। इस महाविहार में दो तरह के विद्यार्थी होते थे। पहले वे विद्यार्थी जो शिक्षा प्राप्त करके बौद्ध-धर्म के प्रचार में ही अपना समस्त जीवन गुज़ारते थे। दूसरे वे विद्यार्थी, जिनका उद्देश्य केवल ज्ञान प्राप्त करना और ग्रहस्थ जीवन गुज़ारना था। ऐसे विद्यार्थियों को महाविहार के आर्थिक संकट की स्थिति में या अपने निर्वाह के लिए कुछ धन की व्यवस्था करनी भी पड़ती थी। ऐसे धन का प्रबन्ध वे भिक्षाटन द्वारा या उच्चवर्ग के विद्यार्थी अपने घर से इसकी पूर्ति करते थे। शिक्षकों और विद्वानों को अपनी योग्यता सिद्ध करने के लिए शास्त्रार्थ के आयोजन में भाग लेना पड़ता था। इस प्रकार के शास्त्रार्थ का

- यह विश्वविद्यालय चारों ओर से चारदीवारी से घिरा हुआ था। विद्यार्थियों को शिक्षक के अधीन सारे कार्य करने पड़ते थे। अपने अध्ययन तथा विश्वविद्यालय के कार्यकलापों के अलावा उन्हें एक सेवक के समान कार्य करना पड़ता था। विद्यार्थियों को भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा आदि की व्यवस्था नि:शुल्क दी जाती थी। विश्वविद्यालय का खर्च पाल-राजाओं द्वारा दिए गए जागीरों से होता था। यहाँ वेद-वेदांत, उपवेद, हेतु विद्या, महायान तथा संख्या योग ग्रंथों की शिक्षा दी जाती थी। विक्रमशिला मुख्यरूप से व्याकरण, न्याय, तत्वज्ञान तथा तंत्रयान तथा कर्मकांड के अध्ययन के लिए ही प्रसिद्ध था किंतु मंत्रायान की भी पढ़ाई का प्रमुख केन्द्र था। इस विश्वविद्यालय में १०८ आचार्य एवं ८००० छात्र रहते थे। वहीं दूसरी ओर कहा जाता है कि रामपाल के समय १६० शिक्षक और १०,००० विद्यार्थी थे। तिब्बत का विक्रमशिला से निकट का सम्बन्ध था और बड़ी संख्या में तिब्बती-विद्वान विक्रमशिला में छात्र थे। तिब्बत में बौद्ध भिक्षुओं के संगठन का श्रेय दीपांकर श्रीज्ञान को जाता है, जो विक्रमशिला के विद्वान पदमासाम्बा से परिचित थे। उन्हें तिब्बत में इतना सम्मान मिला कि वे अतिसदेव के तुल्य पूज्यनीय हो गए। वे मंजुश्री के अवतार माने जाते हैं और तिब्बत के मठों में पूजे जाते हैं।

मुख्य स्तूप के प्रवेश द्वार पर रखे पिलर्स

- सिद्ध-सम्प्रदाय के आचार्य सरहपाद इस महाविहार के कुलगुरु थे। यहाँ प्रधान आचार्य को मुख्य अधिष्ठाता कहा जाता था। विदेशों से आए बौद्ध भिक्षु अपने अध्ययन काल से कुछ समय निकाल कर यहाँ की दुर्लभ व अच्छी-अच्छी पुस्तकों का अपनी-अपनी भाषा में अनुवाद कर अपने देश ले जाते थे। इस कार्य में उन्हें अधिक-से-अधिक सुविधाएँ प्रदान की जाती थीं। इस कार्य में यहाँ के विद्यार्थी और शिक्षक बड़े ही लगन के साथ रहते थे। गोपाल द्वितीय के समय में यहाँ से प्राप्त की गई प्रजापारमिता की पाँडुलिपि अभी भी ब्रिटिश-संग्रहालय में सुरक्षित है। तिब्बती-पाँडुलिपियों से यह ज्ञात होता है कि विक्रमशिला-महाविहार में बहुत बड़े-बड़े विद्वान आचार्य के पद पर थे। वे

- उत्खनन में एक ग्रंथाकार का अवशेष भी मिला है जिसे देखने से प्रतीत होता है कि यह ग्रंथागार कभी काफी समृद्ध रहा होगा। भोजपत्र एवं तालपत्र-ग्रंथों को नष्ट होने से बचाने के लिए ग्रंथागार में शीतोष्झा व्यवस्था थी। ग्रंथागार की दो दीवारों के बीच पानी बहा करता था जो तापमान को हमेशा सामान्य बनाए रखता था। इन उपायों को देखने से यही प्रतीत होता है कि इस भवन का निर्माण पुस्तकालय के लिए ही किया गया होगा। इसमें बौद्ध पांडुलिपियों का अच्छा संग्रह था।
- महाविहार में आधुनिक एकेडमिक-कौंसिल के समान एक समिति थी जो पुस्तकालयों के कार्यों की देख-रेख करती थी। १२ वीं शताब्दी के आसपास

स्तूप के मुख्य हिस्से में बुद्ध की मूर्ति रखने के लिए बना पेडेस्टल, यहां मिली बुद्ध की मूर्ति अभी पटना विवि के

- लामा तारानाथ ने लिखा है कि तुरूष्क आक्रमणकारियों ने इस महाविहार को सुनियोजित तरीक से नष्ट-भ्रष्ट किया। संपूर्ण महाविहार में आग लगा दी गई। मूर्तियों को भी टुकड़ों-टुकड़ों में तोड़ दिया गया तथा यहाँ के विश्वविख्यात पुस्तकालयों को भी जला दिया गया। तारानाथ के अनुसार तुरूष्क आक्रमणकारियों ने इस महाविहार का विध्वंस कर उसके समीप ही महाविहार की

- अब तक हुए उत्खनन द्वारा प्राप्त भग्नावशेष को देखने से ऐसा ज्ञात होता है कि इसे अत्यंत ही बर्बरतापूर्ण ढंग से ध्वस्त किया गया होगा। मुख्य स्तूप तथा संघाराम के मेहराबदार कमरे और मुख्य-स्थल के बाहर के मंदिरों की विस्तृत खुदाई का श्रेय डॉ॰ बी एस वर्मा को जाता है। डॉ वर्मा ने यहाँ दस साल १९७२ से १९८२ तक विश्वविद्यालय स्थल में छुपे पुरातात्विक-वस्तुओं का उत्खनन करवाया। खुदाई-स्थल में नीचे उतरते ही तिब्बती धर्मशाला के अवशेष हैं। लगभग ६० फीट लंबे –चौढ़े एक चबूतरे पर स्थित इस खंडहर की दीवारों और पक्की ईंटों के पाए क्षतिग्रस्त हैं। इस खुदाई से तिब्बती विद्वानों द्वारा वर्णित केन्द्रीय चैत्य के सत्यापित हो जाने से महाविहार के प्रायः सभी भवनों का प्रकाश में आना निश्चित हो गया है। यहाँ ५० फीट ऊँचे और ७५ फीट चौड़े भवन के रूप में एक प्रधान चैत्य था। भूमि–स्पर्श मुद्रा में भगवान बुद्ध की प्रतिमा प्राप्त हुई है। पूर्वी और पश्चिमी भवन में पदयासन (पदमासन) पर बैठे अवलोकितेश्वर की कांस्य-प्रतिमा प्राप्त

- स्तूप के चारों ओर टेराकोटा की मूर्तियाँ लगी हैं। इन मूर्तियों में बुद्ध धर्म और सनातन धर्म से सम्बन्धित चित्र बने हैं। खुदाई के दौरान मठ पूर्णरूपेण चतुष्कोणीय है। यह ३३० वर्गमीटर में फैला है। इसमें २८ कमरे हैं। इसके अलावा १२ भूगर्भ कोष्ठ बने हैं। इसका प्रयोग चिंतन-कार्य के लिए किया जाता था। केन्द्रीय चैत्य-मीटर ऊँचा है। इसके केन्द्र के चारों ओर विपरीत दिशा के अराधना-गृह में दो प्रदक्षिणा-पथों का निर्माण किया गया है। सभी प्रदक्षिणा पथों के ताखों में मिट्टी के पकाए हुए अनेक देवी-देवताओं, पशु-पक्षियों, जानवर और अनेक सांकेतिक वस्तुओं का चित्रण पाया गया है। इसके अलावा खुदाई में यहाँ तंत्र-

मुख्य स्तूप के बाहर बनाए गए मनौती स्तूपों के साथ

- महाविहार के प्रांगण में अब तक दर्जनों प्रकोष्ठों को प्रकाश में लाया जा चुका है। कई जगहों से ईंट निर्मित मेहराबदार कमरों, जिनका उपयोग संभवतः योग साधना के लिए किया गया था, की भी खुदाई की गई है। मुख्य प्रवेश-द्वार के अहाते में दोनों ओर से खुलने वाले चार-चार कमरों की शृंखला पाई गई है। यहाँ प्रथम चरण में चार सीढ़ियों की संरचना, फिर तीन सीढ़ियाँ उसके बाद दो सीढ़ियाँ और दो मीटर के अंतराल पर अंततः एक सीढ़ी की कलापूर्ण बनावट पाई गई है। तिब्बती-स्रोतों के अनुसार यह महाविहार एक विशाल चारदीवारी से घिरा हुआ था और मध्य में

- पाल शासक काल में बौद्ध धर्म के तहत तंत्रज्ञान (वज्रयान) का विकास हुआ। पाल सम्राटों ने उदंतपुरी (बिहारशरीफ) संधौन (बेगूसराय), सोमपुर (बांग्लादेश) और विक्रमशिला भागलपुर में तांत्रिक पीठ की स्थापना की थी। विक्रमशिला सबसे बड़ा तांत्रिक केन्द्र था। विक्रमशिला में तंत्र शाखा के बलि आचार्य और होम आचार्य के प्रावधान थे। इतिहासकार यह मान चुके हैं कि विक्रमशिला में तंत्र की साधना के साथ नरबलि की भी प्रथा थी। नरबलि की प्रथा का केन्द्र विक्रमशिला महाविहार से लगभग एक किलोमीटर की दूरी पर बुधासन झील के पास बाँस के घने जंगलों में स्थित आशावरी देवी स्थान था। विक्रमशिला में निरदेह रचना शास्त्र की भी पढ़ाई होती थी जिसमें अस्त्र का प्रयोग, शल्य क्रिया अन्य वीभत्स कार्यों जैसे क्रियाओं से गुजरना पड़ता था। नरदेह रचना शास्त्र, शाक्त आचार्यों द्वारा दी जाती थी।

एक टेराकोटा मूर्ति